## भारवि की शैली

महाकवि मारवि संस्कृत-साहित्य के देदीप्यमान रत्नों में से एक हैं। उसका महाकाव्य बृहत्त्रयी का प्रथम रत्न है। भारवि भाषा, माव, काव्य-सौन्दर्य, रस परिपाक, वर्णन-वैचित्र्य, अलंकार-प्रयोग, विविध छन्दोयोजना और शास्त्रीय पाण्डित्य के सुन्दर निदर्शन हैं। उसकी भाषा में प्रौढ़ता, ओज, प्रवाह और शक्तिमत्ता है। उसका शब्द-संचय भावानुकूल है। भावानुसार कहीं प्रसाद है, कहीं माधुर्य और कहीं ओज । भाषा में शैथिल्य का नितान्त प्रभाव है । मनोभाव, उदात्त कल्पनाओं और गम्भीर विचारों का एक रत्नाकर ही है। अर्थ-गाम्भीर्य और अर्थ-गौरव की जितनी प्रशंसा की जाए, वह थोड़ी ही है। पद-पद पर अर्थ-गौरव उसके वैदुष्य और गम्भीर चिन्तन का परिचायक है। भारवि ने प्रायः सभी रसों का अत्यन्त कुशलता के साथ प्रयोग किया है। श्रृंगार और वीर रस उसके अति प्रिय रस हैं। इनके भेद और उपभेदों तक का सुललित भाषा में प्रयोग है। अलंकारों के प्रयोग में उसकी जादूगरी दर्शनीय है।15वें सर्ग में चित्रालंकारों की बहरंगी छटा इन्द्रधनुष की कान्ति को भी निष्प्रभ कर देती है। कहीं एक ही अक्षर वाले श्लोक हैं तो कहीं दो अक्षर वाले; कहीं पादादियमक, पादान्तादियमक, कहीं गोमूत्रिकाबन्ध है तो कहीं सर्वतोभद्र, कहीं एक ही श्लोक सीधा और उल्टा एक ही होता है तो कहीं पूर्वार्ध और उत्तरार्ध एक ही है, कहीं दो पद समान हैं तो कहीं चारों पद एक ही हैं; कहीं आद्यन्त यमक है तो कहीं शृंखला-यमक; कहीं निरोष्ट्यवर्ण श्लोक है तो कहीं अर्धभ्रमक: कहीं द्वयर्थक और त्र्यर्थक श्लोक हैं तो कहीं चार अर्थ वाले भी श्लोक हैं (१५-५२)। भारवि संस्कृत-काव्यों में रीति-शैली का जन्मदाता है। उसके ग्रन्थ के आरंभ में 'श्री' शब्द तथा सर्गान्त श्लोकों में 'लक्ष्मी' शब्द का प्रयोग उसकी प्रमुख विशेषता है। माघ ने शिशुपालवध में इसी शैली का अनुसरण किया है। भारवि का प्रकृति-चित्रण, अन्तः प्रकृति और बाह्य प्रकृति का चित्रण अत्यन्त मनोरम और प्रशंसनीय है। उसने विविध छन्दों का प्रयोग करके अपनी छन्दोयोजना-सम्बन्धी दक्षता प्रदर्शित की है। उसका काव्य-सौन्दर्य 'नारिकेलफलसम्मितम्' माना गया है, जो बाहर कठोर, किन्तु अन्दर अत्यन्त मधुर

है। वेद, उपनिषद्, दर्शन, पुराण, नीति, राजनीति, ज्योतिष, भूगोल, कृषि और कामशास्त्र आदि से संबद्ध वर्णन उसके अगाध पाण्डित्य के सूचक हैं। 'भारवेरर्थगौरवम्', 'भा रवेरिव भारवेः प्रकृतिमधुरा भारविगिरः' आदि सूक्तियाँ वस्तुतः कवि की गरिमा प्रकट करती हैं।

(क) भाषा-सौष्ठव-

भारवि की भाषा में लालित्य, माधुर्य प्रौढ़ता का सुन्दर समन्वय है। प्रसंग और भाव के अनुकूल शब्दावली का सर्वत्र प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं व्याकरण के कठिन रूपों का भी अतिदक्षता के साथ प्रयोग गया है । तपस्या के लिए जाते समय द्रौपदी से विदाई लेते हुए अर्जुन का मनोहारी वर्णन है:

अकृत्रिमप्रेमरसाभिरामं रामार्पितं दृष्टिविलोभि दृष्टम् ।

मनः प्रसादाञ्जलिना निकामं जग्राह पाथेयमिवेन्द्रसूनु: ॥ (कि० ३-३७)

शिव और अर्जुन के युद्ध में एक ही श्लोक में एक ही शब्दावली में दोनों के का युगपत् पतन अत्यन्त सुन्दर भाषा में वर्णित है।

घनं विदार्यार्जुनबाणपूगं ससारवाणोऽयुगलोचनस्य ।

घनं विदार्यार्जुनबाणपूगं ससार बाणो युगलोचनस्य ॥ (कि० १५-५०)

(ख) भावाभिव्यक्ति—

भारवि ने अर्थगौरव, कल्पना और सूक्ष्म विचारों का मधुर संमिश्रण किया है। उसने अपना मन्तव्य निम्नलिखित श्लोक में प्रस्तुत किया है:

स्फुटता न पदैरपाकृता न च न स्वीकृतमर्थगौरवम् ।

रचिता पृथगर्थता गिरां न च मामर्थ्यमपोहितं क्वचित् ॥ (२-२७)

पदों में स्पष्टता, अर्थगौरव-युक्तता, अपुनरुक्तदोष और साकांक्षता-गुण का होना अनिवार्य है।

सांसारिक विषय-भोगों की नश्वरता और दुःखान्तता का क्या ही सुन्दर शब्दों में वर्णन किया गया है :

शरदम्बुधरच्छायागत्वर्यो यौवनश्रियः। आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः॥ (११-१२)

यौवन शरत्कालीन बादलों के तुल्य क्षणिक है। भौतिक विषय-भोग आपाततः मनोहर होते हैं, किन्तु इनका अन्त दुःखद होता है।

भाषा के वैभव का अत्यन्त सुन्दर रूप में वर्णन करते हुए कवि का कथन है कि प्रसाद, माधुर्य और अर्थगौरव से युक्त वाग्देवी पुण्यात्माओं को ही प्राप्त होती हैं:

विविक्तवर्णाभरणा सुखश्रुतिः प्रसादयन्ती हृदयान्यपि द्विषाम्।

प्रवर्तते नाकृतपुण्यकर्मणां प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती।। (१४-३)

वाग्मिता की प्रशंसा में कवि का कथन है कि,

भवन्ति ते सभ्यतमा विपश्चितां मनोगतं वांचि निवेशयन्ति ये।

नयन्ति तेष्वप्युपपन्ननैपुणा गभीरमर्थं कतिचित् प्रकाशताम् ॥ (१४-४)

अपने मनोगत विचारों को सुन्दर भाषा में अभिव्यक्त करने वाले व्यक्ति ही सभ्यतम होते हैं। उनमें भी विशेष दक्ष व्यक्ति ही गंभीर भावों को सरल रूप में अभिव्यक्त करने में समर्थ होते हैं।

मानव-स्वभाव का क्या ही मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है कि कोई भाव और अर्थगौरव पर बल देते हैं तो कोई भाषा के परिष्कार पर। ऐसी स्थिति में बड़ी कठिनाई यह है कि सबकी मनपसन्द बात कैसे कही जाए:

स्तुवन्ति गुर्वीमभिधेयसम्पदं विशुद्धिमुक्तेरपरे विपश्चितः।

इति स्थितायां प्रतिपूरुषं रुचौ सुदुर्लभाः सर्वमनोरमा गिरः॥ (१४-५)

कहीं-कहीं पर भारवि ने सामान्य वर्णनों में भी शास्त्रीय पाण्डित्य का प्रदर्शन करके उसे गंभीर बना दिया है। प्रस्तुत श्लोक में अर्जुन के अमोघ बाणों की व्याकरण के

सार्थक शब्दों से तुलना की गई है और उनकी सार्थकता प्रतिपादित की गई है।
संस्कारवत्त्वाद् रमयत्सु चेतः प्रयोगशिक्षागुणभूषणेषु ।
वयं यथार्थेषु शरेषु पार्थः शब्देषु भावार्थमिवाशशंसे ॥ (१७-६).

(ब) रस-परिपाक-

भारवि ने शृंगार और वीर रसों के वर्णन में अतिशय सिद्धहस्तता दिखाई है। सर्ग ८ और ९ में संभोग श्रृंगार का सटीक वर्णन है। सर्ग १३ से १७ तक युद्ध-वर्णन में वीररस का परिपाक है। अन्य रस गौण रूप में हैं और यत्र-तत्र संक्षेप में दृष्टिगोचर होते हैं। उदाहरणार्थ शृंगार के कुछ श्लोक अधोलिखित हैं:

जल-क्रीडा के वर्णन में अंगार-रस का सुन्दर चित्रण हुआ है। पति ने पत्नी का हाथ पकड़ा और प्रेमविभोर पत्नी के वस्त्र शिथिल हो गए और आर्द्र मेखला ने उन्हें रोककर लज्जा-संवरण किया।

विहस्य पाणौ विधृते धृताम्भसि प्रियेण वध्वा मदनार्द्रचेतसः।
सखीव काञ्ची पयसा घनीकृता बभार वीतोच्चयबन्धमंशुकम् ॥ (८-५१)

सुरत-वर्णन में काम को सुखद की अपेक्षा खेदावह सिद्ध करते हुए उसकी व्याख्या में कहा है :

आदृता नखपदैः परिरम्भाश्चुम्बितानि घनदन्तनिपातैः ।
सौकुमार्यगुणसंभृतकीर्तिर्वाम एव सुरतेष्वपि कामः ॥ (९-४९)

वीर रस के दो उदाहरण प्रस्तुत हैं। शिव-सेना के पराक्रम, उत्साह और अघर्षणीयता का क्या ही सुन्दर वर्णन है :

सुगेषु दुर्गेषु च तुल्यविक्रमैर्जवादहंपूर्विकया यियासुभिः ।
गणैरविच्छेदनिरुद्धमाबभौ वनं निरुच्छवासमिवाकुलाकुलम् ॥ (१४-३२)

अर्जुन के बाणों की प्रशंसा करते हुए शिव के सैनिकों का कथन है कि क्या अर्जुन के गुणों या भय से छिपकर देवता अर्जुन की ओर से बाण चला रहे हैं अन्यथा कैसे अर्जुन के बाण समुद्र की लहरों के तुल्य अनेक होते जा रहे हैं।

हृता गुणैरस्य भयेन वा मुनेस्तिरोहिताः स्वित् प्रहरन्ति देवताः।

कथंन्वमी संततमस्य सायका भवन्त्यनेके जलधेरिवोर्मयः ॥ (१४-६१)

(घ) अलंकार-निरूपण-

जैसा कि पहले कहा जा चुका है भारवि महाकाव्यों में रीति-शैली के जन्मदाता है। उसने ही सर्वप्रथम चित्रालंकारों का प्रयोग बाहुल्य से किया है। यद्यपि प्रलंकारों की सुन्दर छटा सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है, तथापि १५वें सर्ग में चित्र-युद्ध के प्रसंग में चित्रालंकारों का आश्रय लेते हुए विविध व्यूहों का वर्णन किया गया है।

चित्रालंकारों में कहीं एकाक्षर श्लोक है (१५-१४) तो कहीं दो या चार अक्षर वाले (१५-५, ३८); कहीं पादादियमक है (१५-१०) तो कहीं पादान्तादियमक (१५-८); कहीं गोमूत्रिकाबंध है (१५-१२) तो कहीं सर्वतोभद्र (१५-२५); कहीं एक ही श्लोक सीधा और उलटा एक ही होता है (१५-१८,२०) तो कहीं पूर्वार्ध और उत्तरार्ध एक ही है (१५-१६, ५०); कहीं दो पद समान हैं (१५-३५) तो कहीं चारों पद एक ही है (१५-५२), कहीं आद्यन्तयमक है (१५-३१) तो कहीं शृंखलायमक (१५-४२) कहीं निरोष्ठ्यवर्ण श्लोक है (१५-७) तो कहीं अर्धभ्रमक (१५-२७); कहीं द्वयर्थक (१५-१६, ५०) और त्र्यर्थक (१५-४२) श्लोक हैं तो कहीं चार अर्थ वाले श्लोक (१५-५२) भी हैं।

चित्रालंकार-

चित्रालंकार के कुछ सुन्दर उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं।

निम्नलिखित श्लोक में केवल एक वर्ण का प्रयोग है। यह भारवि के असाधारण कौशल का ज्वलन्त निदर्शन है।

न नोननुन्नो नुन्नोनो नाना नानानना ननु ।

नुन्नोऽनुन्नो ननुन्नेनो नानेना नुन्ननुन्ननुत् ॥ (१५-१४) क्रमशः----------